



ध्यान दें:

15

## सृष्टि विचार

प्रत्येक दर्शन के आलोचित विषयों में से सबसे अन्यतम विषय है सृष्टि रचना। किस प्रकार से इस विचित्र रचनात्मक जगत की उत्पत्ति होती है। यह जीव कौन है। इस प्रकार की जिज्ञासा ही अध्यात्म का बीज है। इसलिए शास्त्रों में ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में कहा गया है।

**को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।  
अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आ बभूव॥**

सभी दर्शनों में सृष्टि के विषय में भिन्न भिन्न मत हैं। जैसे सांख्यमत में प्रकृति ही प्रपञ्चसृष्टि की बीजभूत है। न्याय वैशेषिक के मत में तो नित्य परमाणु ही ईश्वर के सिसृक्षवश द्वयणु आदि क्रम से परिणित होते हैं। इस प्रकार से अद्वैत वेदान्त दर्शन का भी सृष्टि के विषय में स्वयं का मत है। अद्वैत वेदान्त में अज्ञानाभिधेया अनिर्वचनीय माय ही प्रपञ्चसृष्टि का कारण है। सृष्टि इस प्रकार से कहने पर किन की सृष्टि इस प्रकार का प्रश्न उत्पन्न होता है। जिसे इस दर्शन में कहा है कि सृष्टि के जीव तथा जगत् की प्रपञ्चात्मक सृष्टि समझना चाहिए। अद्वैत वेदान्त दर्शन ज्ञान के लिए उस दर्शन से सम्बन्धित दर्शनतत्व हमेशा जानना चाहिए।



इस पाठ को पढ़कर के आप समर्थ होंगे;

- अद्वैतवेदान्त के सृष्टि तत्व के विषय में विस्तार से परिचय प्राप्त करने में;
- अद्वैतवेदान्त में परमार्थ रूप से सृष्टि है ही नहीं इस प्रकार के विषय जानने में;
- अद्वैतवेदान्त के मत में सृष्टि तथा श्रुति आदि का आशय विस्तार से जानने में;
- अद्वैतवेदान्त के मत में सृष्टि निष्प्रयोजन है जानने में;
- अध्यारोप तथा अपवाद के विषय में विस्तार से जानने में;
- विवर्तवाद के विषय में तथा परिणामवाद के विषय में विस्तार से जानने में;



ध्यान दें:

- सृष्टि बताने वाली श्रुतियों का भी प्रयोजन जान पाने में;
- ईश्वर की सृष्टि का कारणत्व जान पाने में;
- अज्ञान की दो शक्तियों के विषय में विस्तार से परिचय जान पाने में;
- कार्य तथा कारण के अनन्त्य विषय में परिचय जान पाने में;

### 15.1 ) अद्वैत वेदान्त दर्शन में परमार्थ दृष्टि से सृष्टि ही नहीं है

यहाँ पर यह जानना चाहिए की परमार्थ दृष्टि से अद्वैत वेदान्त दर्शन में सृष्टि ही नहीं है। इसलिए अद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य गौडपद की यह कारिका है

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।

न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥ इति।

इस लोक में यह कहा जाता है कि प्रपञ्च का विनाश नहीं होता है। उत्पत्ति भी नहीं होती है, कोई बद्ध भी नहीं है, कोई साधक भी नहीं है, कोई मुमुक्षु भी नहीं है और कोई मुक्त भी नहीं है। बन्धन के सत्त्व होने पर ही साधक तथा मुमुक्षु मुक्तों का स्थिति प्रसङ्ग होता है। बन्धन के अभाव में तो मुक्ति भी नहीं है इस प्रकार से जानना चाहिए। परमार्थ रूप से सभी अपने अपने स्वरूप में स्थित हैं। यह ही परमार्थ दृष्टि है। व्यवहारिक दृष्टि से तो बद्ध तथा मुक्तादि का व्यवहार समान होता है। इसलिए व्यवहार दृष्टि तथा परमार्थ दृष्टि दो प्रकार की दृष्टि अङ्गीकार की जा सकती है। अद्वैत वेदान्तदर्शन में व्यवहार दृष्टि के द्वारा सृष्टि अङ्गीकार की गई है न की परमार्थ दृष्टि से। परमार्थ दृष्टि से तो केवल अद्वैत ब्रह्म ही विराजमान है। वहाँ पर सृष्टि आदि कार्य है ही नहीं।

अब प्रश्न करते हुए कहते हैं की यदि वेदान्त दर्शन के मत में सृष्टि ही नहीं है तो इस दर्शन में सृष्टि तत्व क्यों आलोचित किया गया है तथा क्यों किया जा रहा है।

तब कहते हैं की यदि हम सृष्टि को नहीं समझेंगे तो हमारे द्वारा दिखाई देने वाला यह जगत् कहाँ से आया है इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर नहीं प्राप्त कर पायेंगे। इसलिए व्यवहार की सिद्धि के लिए अद्वैतवादियों के द्वारा भी सृष्टि को अवश्य ही समझना चाहिए तथा उसके कारण का भी निरूपण करना चाहिए। अन्यथा यदि इस दर्शन को व्यवहार सिद्ध स्वीकार नहीं करें तथा अलौकिक कपोल कल्पित ही स्वीकार करें तो देखने वालों की अनादरणीयता यहां पर आ जाएगी और सामान्य व्यक्ति तो इसे हेय ही समझने लगेंगे। इसलिए अद्वैत वेदान्त दर्शन में सृष्टितत्व अङ्गीकार किया जाता है जिसे इस दर्शन में कोई अलौकिक कल्पना नहीं होती है। लेकिन सृष्टि का तात्पर्य भिन्न होता है। वह क्या होता है इसको आगे प्रतिपादित किया जाएगा।

### 15.2 ) सृष्टि श्रुतियों का आशय

अद्वैत वेदान्त के मत में सच्चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्म ही वस्तु है, उससे अतिरिक्त उपलभ्यमान सब कुछ माया के द्वारा कल्पित है। इसलिए विवेकचूडामणि में कहा गया है।

माया मायाकार्यं सर्वं महदादिदेहपर्यन्तम्।



ध्यान दें:

असदिदमनात्मकं त्वं विद्धि मरुमरीचिकाकल्पम्॥ इति।

इसका अर्थ यह है कि सांख्य स्वीकृत अतिसूक्ष्म महत्त्व से लेकर के अतिस्थूलदेहपर्यन्त सभी माया के कार्य हैं। इसलिए ब्रह्म के व्यतिरेक से सभी मरुमरीचिका तुल्य असद् है इस प्रकार से ज्ञातव्य है। लेकिन यह निष्प्रपञ्च ब्रह्म साधारण मन के द्वार कल्पित नहीं हो सकता है। इसलिए जैसे निष्प्रपञ्च ब्रह्म का बोध साधारण जनों को हो उसके लिए सविशेष ब्रह्म का निरूपण शास्त्रकारों द्वारा किया गया है। वह इस प्रकार से है-

निर्विकल्पं परं ब्रह्म साक्षात्कर्तुम् अनीश्वराः।

ये मन्दास्तेऽनुकम्प्यन्ते सविशेषनिरूपणैः॥ इति।

जो मन्दमति होते हैं वे परब्रह्म का साक्षात्कार करने में समर्थ नहीं होते हैं। इसलिए उनके लिए भगवती श्रुति की अनुकम्प से सविशेष ब्रह्म का उपदेश दिया जाता है यह इस श्लोक का आशय है।

सविशेष ब्रह्म तथा निर्विशेष ब्रह्म एक ही ब्रह्म के दो प्रकार के रूपों की कल्पना है। निर्विशेष ब्रह्म नामरूपोपाधिविवर्जित शुद्धस्वरूप है तथा वह सत्यज्ञानान्तादिपद का लक्ष्य है। उस निर्विशेष ब्रह्म की सभी के द्वारा कल्पना नहीं की जा सकती है इस कारण से नामरूप उपाधि आदि सम्बन्ध की उस शुद्धब्रह्म में कल्पना की गई है। उसके द्वारा नामरूपोपाधिविशेषसम्बन्धित्व से ब्रह्म सविशेष रूप में समझा जाता है। वह ही सविशेष ब्रह्म सृष्टि स्थिति प्रलय कारित्व से ईश्वर रूप में बोधित होता है।

अब कहते हैं कि सविशेष के साथ सृष्टि का क्या सम्बन्ध है तब कहते हैं कि सविशेष ब्रह्म अर्थात् ईश्वर ही प्रपञ्च सृष्टि स्थिति तथ प्रलय का कारण है। इसलिए इस जगत के सृष्टिकर्ता के रूप में ईश्वर ही प्राप्त होता है। निर्विशेष ब्रह्म ही सृष्टिकर्तृत्व रूप से सविशेष ब्रह्म अर्थात् ईश्वर रूप में जाना जाता है। इस प्रकार से सविशेष ब्रह्म के उपदेश से सृष्टि का आदि अर्थ भी उपदिष्ट होता है। सविशेष ब्रह्म के उपदेश से ही निर्विशेष ब्रह्म ही वस्तुतः निर्दिक्षुरूप श्रुति के द्वारा ज्ञातव्य है। इसलिए ही सृष्टि का आदि वर्णन कारण श्रुतियों का आशय होता है। जो सविशेष ब्रह्म को जानते हैं वे शुद्धचित्त होते हुए सविशेष ब्रह्म के सृष्टिकर्तृत्वादि विशेष के त्याग से निर्विशेष ब्रह्म को समझने में भी सक्षम हो सकते हैं।

सृष्टि श्रुतियों के तात्पर्य के विषय में श्री शङ्कराचार्यभगवत्पाद के द्वारा शारीरिकमीमांसाभाष्य में कहा गया है कि “न चेत्यं परिणामश्रुतिः ( सृष्टिप्रतिपादिका श्रुतिः ) परिणामप्रतिपादनार्था, तत्प्रतिपत्तौ फलानवगमात् सर्वव्यवहारहीनब्रह्मात्मभावप्रतिपादनार्था हि सा।” इति।

इससे यह जाना जाता है की सृष्टि प्रतिपादन में भी श्रुति का कोई अन्य तात्पर्य है। केवल सृष्टि के प्रतिपादन के लिए ही प्रपञ्च की सृष्टि प्रदर्शित नहीं होती है अपि तु ब्रह्म को लक्षित करके जानने के लिए ही सृष्टि का प्रतिपादन किया जाता है। किस प्रकार सृष्टि श्रुतियाँ ब्रह्म का प्रतिपादन करती हैं तो कहते हैं जिस कारण से सृष्टि होती है वह कारण ही ब्रह्म है इस प्रकार से कारणमुख से सृष्टि श्रुतियाँ ब्रह्म का बोध करवाती हैं। इसलिए बादरायण के द्वारा रचा गया शारीरिक मीमांसा सूत्र में “जन्माद्यस्य यत” सूत्र है। जिससे इस जगत की सृष्टि होती है तथा जिसमें स्थिति प्रलय आदि सम्भव होती है वह ब्रह्म है, इस प्रकार से इस सूत्र का यह सामान्य अर्थ होता है। इस सूत्र के भाष्य में भगवत्पादशङ्कराचार्य के द्वारा कहा गया है की “इस जगत के नामरूप के द्वारा व्याकृत अनेक कर्तृ भोक्तृ संयुक्त



ध्यान दें:

प्रतिनियतदेशकालनिमित्तक्रियाफलाश्रय मन के द्वारा भी अचिन्त्य रचना रूप के जन्म स्थिति तथा प्रलय जिस सर्वज्ञात शक्ति के कारण होते हैं वह ब्रह्म कहलाता है। इसलिए तैत्तिरीय उपनिषद् में भी कहा गया है।

“यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति।

यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति।” (3.1.1) इति।

इसलिए अद्वैत वेदान्तियों के अभिप्रायानुसार ब्रह्म का निर्दिदिक्षुरूप ही श्रुति तथा सृष्टितत्व के अनुसार प्रतिपादन होता है।

### 15.3 ) अध्यारोपापवादन्याय

सृष्टि के विचार प्रसङ्ग में अद्वैत वेदान्तियों का अध्यारोपापवादन्याय भी प्रसिद्ध है। इसलिए अद्वैतवादियों का यह प्रसिद्ध श्लोक है-

अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते।

शिष्याणां बोधसिद्ध्यर्थं तत्त्वज्ञैः कल्पितः क्रमः॥ इति।

इसका यह अर्थ है कि निष्प्रपञ्च ब्रह्म को अल्पज्ञ शिष्यों को समझाने के लिए तत्त्वज्ञ आचार्य इस प्रकार का अध्यारोपापवादन्याय स्वीकार करते हैं। उससे ही श्रुति में सविशेष ब्रह्म का तथा सृष्टि आदि का वर्णन प्राप्त होता है। निर्विशेष ब्रह्म में सृष्टि आदि कर्तृत्व का आरोप करने से सविशेष ब्रह्म का ज्ञान होने पर सृष्ट्यादिकर्तृत्व शास्त्रों के द्वारा निर्विशेष ब्रह्म को समझाने के लिए ग्रहण की जाती है। यह आरोप आहार्यारोप कहलाता है यह वस्तुगत आरोप नहीं होता है।

अब प्रश्न करते हैं की अध्यारोप किसे कहते हैं तथा अपवाद क्या है? तब कहते हैं की अध्यारोप वस्तुओं का अवस्त्वारोप होता है। सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्म ही वस्तु है उसको छोड़कर समस्त सम्पूर्ण विश्व अवस्तु होता है। इसलिए सत्यभूत ब्रह्म में अनित्य सभी वस्तुओं का मिथ्याभूत आरोप अध्यारोप कहलाता है। इसलिए वेदान्तसार के रचनाकार सदानन्द योगीन्द्र के द्वारा कहा गया है असर्पभूतरस्सी में सर्प के आरोप की जैसे वस्तु में अवस्तु का आरोप ही अध्यारोप कहलाता है। अल्पान्धकार में रस्सी को देखकर सर्प इस प्रकार का ज्ञान होता है। तब वस्तुतः रस्सी रस्सी स्वरूप में ही रहती है लेकिन अज्ञानवश दृष्टा सर्प के रूप में रस्सी को देखता है। तब वह रस्सी के स्वरूप को नहीं जानता हुआ “यह सर्प है” इस प्रकार का व्यवहार करता है। इसी प्रकार से असर्पभूत रस्सी में भी जैसे सर्प के मिथ्याभूत का आरोप होता है उसी प्रकार अकर्ता ब्रह्म में भी जो सृष्ट्यादिकर्तृत्व का मिथ्याभूत जो आरोप होता है वह अध्यारोप कहलाता है। लेकिन यह शास्त्र के द्वारा ब्रह्मतत्व के बाध के लिए किया जाता है। इस कारण से यह आहार्य उपरत्व के द्वारा जानना चाहिए।

अपवाद से तात्पर्य है कि ‘रज्जुविवर्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववद् वस्तुविवर्तस्य अवस्तुनः अज्ञानादेः प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम्’ इति। इसका यह अर्थ है कि रस्सी अपने स्वरूप का त्याग करके सर्पाकार से भासमान रज्जुविवर्त के अपवाद का नाश अधिष्ठानरज्जुमात्र का अवस्थान कहलाता है। इस प्रकार से ब्रह्मविवर्त के अज्ञानादिप्रपञ्च का नाश ब्रह्मस्वरूप मात्र से अवस्थान कहलाता है। जब रस्सी में सर्पारोप मिथ्याभूत है इस प्रकार का यथार्थ ज्ञान होता है। तब रस्सी रज्जु के स्वरूप के द्वारा ही रुकती है। इसी प्रकार जब ब्रह्मविवर्तभूत यह प्रपञ्च मिथ्याभूत अथवा ब्रह्म में जगत् कर्तृत्वादि मिथ्याभूत ज्ञान होता है

तब निर्विशेष ब्रह्म अपने स्वरूप के द्वारा ही रुकता है। यह अधिष्ठानमात्र से स्वरूपावस्थिति ही अपवाद कहलाती है।

**विवर्तस्यास्य जगतः सन्मात्रत्वेन दर्शनम्।**

**अपवाद इति प्राहुरद्वैतब्रह्मदर्शिनः॥ इति।**

इस प्रकार से ब्रह्म में अखिल जगत् का अध्यारोप करके तथा अन्त में नहीं है कुछ भी इस प्रकार से समझकर निर्विशेष ब्रह्म का बोध श्रुतियों के द्वारा तथा अद्वैतवेदान्तियों के द्वारा होता है।



### पाठगत प्रश्न 15.1

1. परमार्थ दृष्टि से अद्वैत वेदान्त दर्शन में सृष्टि नहीं है यहाँ पर प्रमाणभूत गौडपाद की कारिका कौन-सी है?
2. अद्वैत वेदान्त के मत में सविशेष ब्रह्म का निरूपण शास्त्र में किनके लिए किया गया है?
3. एक ही ब्रह्म के दो प्रकार के रूप किस प्रकार से होते हैं?
4. निर्विशेष ब्रह्म किसे कहते हैं?
5. ब्रह्म का सविशेषत्व किसलिए है?
6. सृष्टि श्रुतियाँ किसलिए होती हैं?
7. सृष्टि के विचार प्रसङ्ग में अद्वैत वेदान्तियों का कौन-सा न्याय प्रसिद्ध है?  
क) तृणारणिमणिन्यायः  
ख) शाखाचन्द्रमसन्यायः  
ग) अध्यारोपापवादन्यायः  
घ) तिलतण्डुलन्यायः।
8. अध्यारोप किसे कहते हैं?
9. अपवाद किसे कहते हैं?
10. अध्यारोप के एक दृष्टान्त का प्रतिपादन कीजिए?

### 15.4) विवर्तवाद और परिणामवाद

ब्रह्म विवर्त जगत का ब्रह्ममात्रत्व तथा अपवाद यह अपवाद के विषय में कहा गया है। लेकिन ब्रह्म का विवर्तभूत यह जगत् विकल्प के रूप में परिणामभूत जगत् इस प्रकार से निः संशय से किस प्रकार से जाना जा सकता है। इसलिए विवर्तवाद के विषय में तथा परिणामवाद के विषय में सामान्यज्ञान पूर्व में आवश्यक है। यथा स्वरूप अवस्थित वस्तु का अन्यथा भाव दो प्रकार का होता है। परिणामभाव तथा विवर्तभाव। परिणाम भाव किसे कहते हैं तब कहते हैं कि परिणामभाव जब वस्तु स्वरूप को त्यागकर अपने ही अन्य रूप में परिवर्तित हो जाती है वह परिणाम भाव कहलाता है जैसे दूध अपने स्वरूप को



ध्यान दें:



ध्यान दें:

त्यागकर दधि के आकार में परिणमित हो जाता है। अब प्रश्न करते हैं विवर्त किसे कहते हैं? तब कहते हैं की अपने का परित्याग किये बिना स्वरूप से अलग जिसकी प्रतीति होती है वह विवर्त कहलाता है। जैसे शुक्ति अपने रूप को त्यागे बिना रजत के रूप में मिथ्या प्रतीत होती है तथा रज्जु स्वरूप त्याग के बिना सर्परूप में प्रतीति होती है यह विवर्त कहलाता है। इसलिए विवर्त के विषय में कहा गया है

**सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदीरितः।**

**अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदीरितः॥ इति।**

जब किसी वस्तु का वस्तुगत अन्यथा रूप के द्वारा विकार होता है तब वह विकार ही परिणाम कहलाता है। जैसे दूध दही रूप में परिणमित हो गया। वस्तुगत दूध का दही रूप में परिणाम होता है। दूध अपना स्वरूप त्यागकर नया दही रूप स्वरूप ग्रहण करता है। लेकिन जब किसी वस्तु का वस्तुगत अन्यथा रूप विकार नहीं होता है वह वस्तु उसी रूप में स्थित रहती है लेकिन भ्रान्ति के कारण वह वस्तु भिन्न रूप में प्रतीत होती है तब वह विवर्त कहलाती है। जैसे शुक्ति में यह रजत है इस प्रकार का भ्रमज्ञान होने पर रजत को स्वीकार करने में भ्रान्तजन्य रजत की प्रवृत्ति होती है। रजत रूप जो कार्य भ्रान्ति के द्वारा प्रतीत होता है वस्तुगत वह मिथ्याभूत ही होता है। इस प्रकार से कारण की वस्तुतः वैसी स्थिति नहीं होती है भ्रान्ति से कारण की मिथ्याकार्त्त्व के द्वारा प्रतीति ही विवर्त है। इस मत के अनुसार कारण ही कार्य स्वरूप से भासित होता है इस प्रकार से कारण का ही सत्यत्व होता है ना की कारण का सत्यत्व। एक कारण सत्ता ही विविध कार्यों के आकार के द्वारा भासित होती है, सुवर्ण कुण्डलाकार के द्वारा भासित होता है, मिट्टी घटाकार के द्वारा भासित होती है। कुण्डल जिस प्रकार से सुवर्ण का ही आकार भेद होता है तथा घट मिट्टी का उसी प्रकार परिदृश्यमान जगत रूपी सद् वस्तु ही विविध आकारों के माध्यम से दिखाई देती है। सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व यह सद् मात्र के रूप में ही था इसके अतिरिक्त ओर कुछ नहीं था। घट शर आदि भी जैसे परस्पर विभिन्न होते हुए मृत्तिका अलावा और कुछ नहीं होते हैं, पिण्ड का घट से तथा घट का पिण्ड से भेद होने पर भी दोनों मिट्टी से अभिन्न ही होते हैं। उसी प्रकार विविधसृष्टिपदार्थाक्रान्तसंसार भी सत् के अलावा ओर कुछ नहीं है। अपितु सत् ही रूपान्तर संसार है जो सत् वस्तु है वह ही ब्रह्म है। अद्वैत वेदान्त के मत में अविद्या के कारण से ही यह मिथ्याभूत जगत परमार्थसत्यभूत ब्रह्म में अध्यस्त है ब्रह्म ज्ञान होने पर अविद्या का नाश होता है। उससे मिथ्याभूत जगत भी ब्रह्म में बाधित होता है। यह ही विवर्तवाद अनिर्वचनीय कारणवाद, सत्कारणवाद के रूप में भी जाना जाता है।

अप्ययदीक्षित ने परिणाम तथा विवर्त का कुछ भिन्न प्रकार से उपस्थापन किया है। उनके मत में समसत्ताकोऽन्यथाभाव परिणाम तथा विषयसत्ताकोऽन्यथाभाव विवर्त होता है। इस प्रकार से तीन प्रकार की सत्ता अद्वैत वेदान्त में स्वीकार की गई है। प्रातिभासिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता, पारमार्थिक सत्ता। प्रातिभासमात्र जिस वस्तु की सत्ता होती है वह प्रातिभासिक सत्ता कहलाती है। जैसे रस्सी में सर्प की जो सत्ता होती है वह प्रातिभासमात्र के कारण प्रातिभासिक सत्ता कहलाती है। वह सत्ता ही व्यवहार के द्वारा बाधित होती है। व्यवहारबाध्यत्व ही प्रातिभासिकत्व होता है इस प्रकार से इसका लक्षण कर सकते हैं। व्यावहारिक प्रपञ्च की जो सत्ता होती है वह व्यावहारिक सत्ता कहलाती है, और वह पारमार्थिक ब्रह्मज्ञान के द्वारा बाधित होती है। इसलिए पारमार्थिक सत्ताबाध्यत्व व्यावहारिकत्व इस प्रकार से लक्षण कर सकते हैं। पारमार्थिक सत्ता ही नित्य सत्ता है। इस प्रकार जो वस्तु जब समान सत्ता से अन्यथा भाव को प्राप्त

होती है तब वह परिणाम कहलाती है जैसे मिट्टी घट के रूप में जब अन्यथा भाव को प्राप्त करती है तब मिट्टी तथा घट के व्यावहारिकत्व से समान सत्ताकत्व परिणाम जानना चाहिए न की विवर्त जब रस्सी सर्परूप के द्वारा अन्यथाभाव को प्राप्त करती है तब रज्जु के व्यावहारिकत्व से तथा सर्प के प्रातिभासिकत्व से विषमसत्ताकत्व से रज्जु तथा सर्प का विवर्त जानना चाहिए।

### 15.5 ) सृष्टि का प्रयोजन

सांख्यदर्शन में जिस प्रकार से त्रिगुणात्मक प्रकृति के भोग के लिए पुरुष के कैवल्यार्थ प्रकृति की प्रवृत्ति जो सप्रयोजन रूप में देखी जाती है। उसी प्रकार अद्वैत वेदान्त दर्शन में भी सृष्टि का कुछ प्रयोजन है जिस प्रयोजन से द्वारा प्रेरित ईश्वर प्रपञ्च की सृष्टि करता है। इसलिए कहा गया है अविद्या कल्पित नाम रूप व्यवहार विषयों से युक्त सृष्टि होती है। इस कारण सृष्टि श्रुतियाँ परमार्थ का विषय नहीं होती है। इस प्रकार से अद्वैत वेदान्तियों के द्वारा अङ्गीकार करने से परमार्थ रूप से तो सृष्टि का कोई भी प्रयोजन नहीं ढूँढना चाहिए कुछ सृष्टि विषयक श्रुतियों का ब्रह्मबोधक ही तात्पर्य स्वीकार करने से ब्रह्मप्रतिपादनार्थ ही सृष्टि श्रुति कही गई है इस प्रकार से व्यवहार दृष्टि से सृष्टि श्रुतियों का कोई प्रयोजनत्व होता है।

कहते हैं कि कोई प्रवृत्ति होती है तो उसका प्रयोजन अङ्गीकार करना चाहिए। इसलिए यह प्रसिद्ध उक्ति है 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते'। जगत् की सृष्टि रूपी महान् प्रवृत्ति होती है तो उस प्रवृत्ति का प्रयोजन भी अङ्गीकार करना चाहिए नहीं तो जैसे उन्मत्त की निष्प्रयोजन प्रवृत्ति देखी जाती है उसी प्रकार ईश्वर की भी निष्प्रयोजनत्व से प्रवृत्ति मानने पर उन्मत्त के प्रसङ्ग की समोत्तपत्ति होने लग जाएगी। इसलिए कहते हैं की लीला रूप ही यह ईश्वर की जगत् के सर्जन की प्रवृत्ति न की सप्रयोजन। इसलिए बादरायण कृत ब्रह्मसूत्र में कहा गया है "लौकवतु लालाकैवल्यम्" इस प्रकार से। जैसे लोक में कोई आप्त काम राजा बिना किसी प्रयोजन के क्रीड़ा विहारादि में प्रवर्तित होता है, जैसे श्वास तथा प्रश्वास के बाह्य कुछ प्रयोजन के बिना ही वह स्वभाव से सम्भव होती है। उसी प्रकार ईश्वर की भी प्रयोजन के बिना ही स्वभाव से ही केवल लीलीरूपी यह प्रवृत्ति सम्भव होती है। ईश्वर की प्रवृत्ति प्रयोजन युक्त है इस युक्ति का समर्थन श्रुतियाँ नहीं करती हैं। यदि आत्म काम ईश्वर का कोई प्रयोजन स्वीकार करें तो उसका आप्तकामत्व सिद्ध नहीं होता है। और आप्तकामत्व स्वीकार करें तो सप्रयोजनत्व सिद्ध नहीं होता है। श्रुतियों में ईश्वर का आप्तकामत्व बार-बार उपदेश दिया गया है। इस कारण से आप्तकाम ईश्वर की लीलीरूप निष्प्रयोजन ही यह जगत्सृष्टिरूप प्रवृत्ति है। इस प्रकार से अङ्गीकार करना चाहिए। भलेही ईश्वर यह सृष्टिरूपी कार्य बहुत ही महान लगता है फिर भी अपरिमितशक्तित्व के कारण ईश्वर की यह लीलीरूपी जगत्सृष्टि होती है। यदि संसार में लीला का भी कोई सूक्ष्मप्रयोजन माने तो कहते हैं कि ईश्वर का जगत् की सृष्टि के विषय कोई सूक्ष्मप्रयोजन नहीं होता है क्योंकि उसके आत्म कामत्व को श्रुतियों में कई बार कहा गया है। गौडपादाचार्य के द्वारा माण्डूक्यकारिका में कहा गया है

**भोगार्थं सृष्टिरित्यन्ये क्रीडार्थमिति चापरे।**

**देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा॥ इति। [1.9]**

इसलिए ईश्वर की यह स्वभाव रूप ही प्रवृत्ति होती है। अब यदि कोई कहे की ईश्वर के अप्रयोजनत्व से सृष्टि प्रवृत्ति भी नहीं होती है, तो ऐसा नहीं है सृष्टि होती है इस प्रकार से श्रुतियों ने



ध्यान दें:



सृष्टि विचार



ध्यान दें:

स्वयं प्रतिपादित किया है इसलिए सृष्टि नहीं है इस प्रकार से श्रुतियों के विरुद्ध अङ्गीकार नहीं कर सकते हैं। यदि उन्मत्त निष्प्रयोजानात्मक प्रवृत्ति की तरह ईश्वर की प्रवृत्ति स्वीकार करें तो ईश्वर को उन्मत्त भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि श्रुतियों में ईश्वर को सर्वज्ञत्व माना है। इसलिए लीलारूप निष्प्रयोजन ही जगत्सृष्टिरूपी यह ईश्वर की प्रवृत्ति होती है।

### 15.6 ) ईश्वर का वैषम्यनैर्घृण्य प्रसङ्ग विचार

यदि ईश्वर को ही जगत् का सृष्टा इस प्रकार से माने तो ईश्वर में विषमता तथा निर्घृण्यता के दोष का आरोप होने लगता है। जिस प्रकार से लोक में देखा भी जाता है कि कुछ देव आदि आजन्म सुखी रहते हैं तथा पशु आदि आजन्म दुःखी रहते हैं, मनुष्य कभी सुखी तथा कभी दुःखी, कोई धनवान तो, कोई दरिद्र, कुछ अन्धे, तो कुछ बहरे, कुछ बहुत ही सुन्दर तथा कुछ बहुत ही कुरूप होते हैं। इस प्रकार से विषमता युक्त सृष्टि का निर्माण करने वाले ईश्वर का खल व्यक्ति के समान राग तथा द्वेष भाव दिखाई देते हैं नहीं इस प्रकार की विषमता का क्या कारण हो सकता है। जैसे क्रूर व्यक्ति सुखी लोगों को दुःख देता है उसी प्रकार ईश्वर भी घृणावश दुःखयोग के विधान से मनुष्यों को दुःखी करते हैं। विषम सृष्टिकारित्व से तथा दुःखों के विधान से ईश्वर में वैषम्य तथा निर्घृण्य रूपी दोष का आरोप होता है। लेकिन शुद्धस्वभाव वाले ईश्वर में वैषम्य तथा नैर्घृण्य रूपी दोष नहीं हो सकता। इसलिए ईश्वर विषम सृष्टि का कारण नहीं हो सकता तथा नहीं इस जगत् का सृष्टा।

तब उत्तर देते हुए कहते हैं कि ईश्वर निरपेक्ष होता हुआ विषम सृष्टि का निर्माण नहीं करता है अपितु वह सापेक्ष होता हुआ ही विषम सृष्टि का ही निर्माण करता है। बादरायण के एक सूत्र में कहा भी है “वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति” [2.1.34] इति। तो कहते हैं कि फिर ईश्वर किस की अपेक्षा करता है ईश्वर केवल धर्म तथा अधर्म नाम से कहे जाने वाले कर्मों को देखता है। इसलिए भाष्यकार भगवत्पाद शङ्कराचार्य ने कहा है कि जो ईश्वर प्राणियों के धर्म तथा अधर्म को देखते हुए जो यह विषम सृष्टि की है इसमें ईश्वर का कोई भी अपराध नहीं है, ईश्वर को तो मेघ की तरह देखना चाहिए मेघ (बादल) धान, जौ आदि धान्यों में साधारण कारण होता है, धान आदि में विषमता तो उनके बीजगत साधारण सामर्थ्य के कारण होती है, इसी प्रकार ईश्वर भी देव मनुष्यादि सृष्टि में साधारण कारण होता है, देव मनुष्यादि में वैषम्य तो तत्तज्जीवगत साधारण कर्मों के कारण ही होता है। इस प्रकार से ईश्वर तो सापेक्ष ही होता है वह वैषम्य तथा नैर्घृण्य दोष से दूषित नहीं होता है। ईश्वर ही प्राणियों को फल देने के लिए उनके कर्मानुसार सृष्टि करता है। जो कर्म जिस प्रकार का होता है वह उसी प्रकार का जन्म प्राप्त करता है, तथा उसी प्रकार के सुख तथा दुःखादि को प्राप्त करता है। इसलिए कर्मों के आक्षेप से ईश्वर में वैषम्य तथा निर्घृण्य दोष नहीं होते हैं। तब प्रश्न करते हैं कि फिर सापेक्ष ईश्वर ही किस प्रकार नीच मध्यम तथा उत्तम सृष्टि की रचना करता है, इसलिए श्रुतियाँ यह दिखाती हैं कि -‘एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषत एष उ एवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते’ (कौषितकीब्राह्मणम् 3.8) इति, ‘पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन’ (बृहदारण्यकोपनिषत् 3.2.13) इति च। स्मृतियों ने भी प्राणि के कर्म विशेषों पर ही आक्षेप करके एक ही ईश्वर का अनुग्रहीतृत्व तथा निग्रहीतृत्व दिखाया है। इसलिए भगवान् कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ इति। [4.11]





पाठगत प्रश्न 15.2

1. परिणाम किसे कहते हैं?
2. विवर्त किसे कहते हैं?
3. अप्पयदीक्षित के मत में परिणाम तथा विवर्त क्या है?
4. अद्वैतवेदान्तियों का सत्तात्रय क्या है?
5. व्यवहारिकत्व किसे कहते हैं?
6. अद्वैत वेदान्त के मत में परमेश्वर की सृष्टि प्रवृत्ति किस प्रकार की है?
  - क) सप्रयोजन
  - ख) लीलारूप
  - ग) भोगरूप
  - घ) मोक्षरूप
7. किस प्रकार की अपेक्षा करके ईश्वर सृष्टि में प्रवर्तित होता है?
8. विषम सृष्टि किसलिए होती है?

### 15.7 ) ईश्वर ही जगत की सृष्टि का कारण हैं

अद्वैत वेदान्त के मत में ईश्वर ही जगत की सृष्टि का कारण है। वह ईश्वर ही अपनी माया शक्ति का अवलम्बन लेकर के जगत की सृष्टि करता है। माया शक्ति ही अज्ञान कहलाती है। उस अज्ञान का लक्षण सदानन्दयोगीन्द्र ने वेदान्तसार में बताया है- “अज्ञानं तु सदसद्भ्याम् अनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधी भावरूपं यत्किञ्चित्” अज्ञान सद् तथा असद् दोनों के द्वारा अनिर्वचनीय त्रिगुणात्मक ज्ञानविरोधी भावरूप होता है। पञ्चदशीकार विद्यारण्यस्वामी के द्वारा सत्त्वगुण के तारतम्य के अनुसार अविद्या तथा माया इस प्रकार से अज्ञान के दो रूपों की कल्पना की गई। पञ्चदशीकार के मत में अविशुद्धसत्त्वात्मिका अविद्या ही जीव की उपाधि है तथा विशुद्धसत्त्वात्मिका माया ही ईश्वर की उपाधि है इसलिए माया का उपाधिक ईश्वर कहलाता है तथा अविद्योपाधिक जीव। भले ही माया ईश्वर की उपाधि फिर भी माया ईश्वर के अधीन होकर के रहती है, ईश्वर माया के परतन्त्र नहीं होता है। अविद्योपाधिक जीव तो अविद्या के अधीन होकर के ही रहता है इस कारण से वह अविद्या के परतन्त्र होता है। इस प्रकार से माया तथा अविद्या का भेद जानना चाहिए। अतः पञ्चदशी में कहा है

सत्त्वशुद्धयविशुद्धिभ्यां मायाविद्ये च ते मते।

मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात् सर्वज्ञ ईश्वरः।

अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचि यादनेकथा॥ इति।

फिर वह अज्ञान समष्टि तथा व्यष्टि के भेद से दो प्रकार का होता है। समष्टि अज्ञानोपाहितचैतन्य ईश्वर होता है तथा व्यष्टि अज्ञानोपाहितचैतन्य जीव होता है, इस प्रकार से व्यवहार किया जाता है।



ध्यान दें:

## सृष्टि विचार



ध्यान दें:

भले ही अज्ञान का आश्रय लेकर के ईश्वर जगत् की सृष्टि करता है फिर भी केवल अज्ञान ही प्रपञ्च का कारण नहीं होता है। अपितु स्वयं ईश्वर ही जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण होता है। जैसे चेतन कुम्भकार घट के प्रति निमित्त कारण होता है उसी प्रकार ईश्वर भी चैतन्य की प्रधानता के कारण जगत् का निमित्तकारण होता है। जैस मृत्तिका घट के लिए उपादान कारण होती है उसी प्रकार ईश्वर भी अपनी उपाधि माया की प्रधानता के कारण जगत् का उपादान कारण होता है। एक ही वस्तु के निमित्तकारण तथा उपादान कारण होने से यह दृष्टान्त मकड़ी की तरह है। जैसे मकड़ी जाले को बनाने में अपनी प्रधानता से निमित्त कारण तथा अपने शरीर की प्रधानता से उपादान कारण होती है वैसे ही ईश्वर भी चैतन्य की प्रधानता के कारण जगत् का निमित्तकारण तथा अचैतन माया की प्रधानता के कारण उपादान कारण होता है, इस प्रकार से ईश्वर का जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण समझना चाहिए। सर्ववेदान्तसंग्रह में कहा भी गया है कि

यथा लूता निमित्तञ्च स्वप्रधानतया भवेत्।

स्वशरीरप्रधानत्वेनोपादानं तथेश्वरः॥

निमित्तमप्युपादानं स्वयमेव भवन् प्रभुः।

चराचरात्मकं विश्वं सृजत्यवति लुम्पति॥ इति।

निश्चित रूप से ईश्वर का अभिन्न निमित्तोपादानकारणत्व होता है ऐसा कुछ श्रुतियों में प्रमाण भी मिलता है 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' इस प्रकार के वाक्य में ब्रह्म का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण ज्ञापित भी होता है। सृष्टि कर्तृत्व के कारण ईश्वर जगत् का निमित्त कारण होता है लेकिन वह केवल निमित्त कारण ही नहीं है अपितु सृज्यमान जगत् में स्वयं ही प्रविष्ट भी है, ऐसा भी श्रुतियों में कहा गया है। तो फिर अचेतन जड प्रपञ्च के उपादान कारण चेतन ईश्वर किस प्रकार से हो सकता है यह तो कार्य तथा कारण के अनन्यत्व दोनों बातों साथ में नहीं चल सकती। यदि ईश्वर का उपादान कारणत्व माने तो कार्यकारण के अभेद रूप प्रसङ्ग से तो जड प्रपञ्च का भी चैतन्यरूपत्वप्रसङ्ग होने लगता है।

तब उत्तर देते हुए कहते हैं की पहला कारण तो कार्य तथा कारण के अनन्यत्व होने पर भी चेतन से अचेतन तथा अचेतन से चेतन की उत्पत्ति जगत् में देखी जाती है इस कारण से यह एकान्तिक नियम नहीं है कि चेतन-अचेतन का उपादान कारण होने योग्य नहीं है। जैस संसार में गोबररूपी अचेतन चेतन बिच्छु आदि की तथा मनुष्यरूपी चेतन से अचेतन नखकेशादि की उत्पत्ति देखी जाती है।

दूसरा कार्य कारण के अभेद होने पर भी सभी कारण के गुण कार्य में हो ऐसा भी नियम नहीं है। सभी कारण के गुण यदि कार्य में होंगे तो यह कारण है तथा यह कार्य है इस प्रकार का व्यवहार भेद ही नहीं हो पायेगा।

तीसरा चेतन ईश्वर तो प्रपञ्च का विवर्तोपादान कारण है न की परिणामि उपादान कारण। जगत् का परिणामी उपादान कारण तो अज्ञान के कारण माया का ही भेद है। ईश्वर के विवर्तोपादानत्व से जगत् के चेतनत्व के प्रसङ्ग में नित्यता नहीं है। अतः चेतन ईश्वर के उपादान कारणत्व मानने पर यहाँ पर कोई दोष नहीं होता है।

चौथा कारण- जैसे लोहे के सन्निधान के समय (फेक्ट्री में) लोहा भी चेष्टा करता है वैसे ही चैतन्य के सन्निधान में जड अज्ञान भी चेष्टा करता है इस प्रकार से अज्ञान विकार के प्रति चेतन का निमित्तत्व, जडाकाशादिकार्य के प्रति माया का साक्षात् उपादानत्व से ईश्वर की भी परम्परा से गौणता से वह उपादानत्व के विरुद्ध नहीं होता है।



ध्यान दें:

## 15.8 ) अज्ञान का शक्तिद्वय

अद्वैत वेदान्तियों के द्वारा अज्ञान की दो शक्तियों को अङ्गीकार किया गया है। आवरण शक्ति तथा विक्षेप शक्ति। आवरण शक्ति के द्वारा वस्तु आच्छादित होती है तथा विक्षेप शक्ति के द्वारा नूतन वस्तु प्रतीत होती है। जैसे भ्रान्तिवश जहाँ पर रस्सी में सर्प की प्रतीति होती है वहाँ पर पहले तो आवरण शक्ति के द्वारा रस्सी का स्वरूप आच्छादित होता है फिर विक्षेप शक्ति के द्वारा रस्सी में सर्प इस प्रकार की नयी वस्तु प्रतीत होती है। जहाँ पर भ्रान्ति के द्वारा भ्रान्ति के द्वारा शुक्ति में रजत की प्रतीति होती है वहाँ पर अज्ञान की आवरण शक्ति के द्वारा शुक्ति का स्वरूप आच्छादित होता है। अज्ञान की विक्षेप शक्ति से शुक्ति में रजत है इस प्रकार की नूतन वस्तु प्रतीत होती है। इसी प्रकार प्रकृत आत्मा में आवरणशक्ति से स्वस्वरूप आच्छादित होता है उसी प्रकार विक्षेप शक्ति के द्वारा आत्मस्वभाव विरुद्ध कर्तृत्व भोक्तृत्वादि आत्मा में प्रकाशित होते हैं। इसलिए हस्तामलक ने कहा है कि-

**घनच्छन्नदृष्टिः घनच्छन्नमर्क**

**यथा निष्प्रभं मन्यते चातिमूढः।**

**तथा बद्धवत् भाति यो मूढदृष्टेः**

**स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा॥ इति।**

मेघ के द्वारा जिस मूढ की दृष्टि आवृत होती है, वह मूढ जैसे प्रकाशमान सूर्य को मेघावृत्त तथा निष्प्रभ मानता है। वैसे ही जिसका ज्ञान अज्ञान के द्वारा आच्छादित रहता है उसके पास में नित्य चैतन्यस्वरूप आत्मा भी बद्ध रूप में प्रतीत होती है। उस प्रकार का नित्यज्ञानस्वरूप आत्मा ही 'मैं' इस प्रकार से कहा जाता है। अज्ञान ही आवरण स्वभाव होता है। अज्ञान का उसी प्रकार का आच्छादन सामार्थ्य ही आवरणशक्ति कहलाता है। वस्तुतः अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्म कभी भी अज्ञान द्वारा आवृत्त नहीं होता है इसलिए "घटः सन्", "पटः सन्" होता हुआ वह घट पटादि के रूप में भासित होता है।

अब यह संशय होता है कि अपरिच्छिन्न चैतन्यस्वरूप असीम आत्मा का किस प्रकार से असीम परिच्छिन्न अज्ञान का आवरण होता है, तब यह समाधान किया जाता है की वस्तुतः अज्ञान ही स्वप्रकाश सर्वव्यापक ब्रह्म का आवरण कारक नहीं होता है। जब अज्ञान परिच्छिन्न जीव का आवरण होता है तब ब्रह्म आवृत्त होता है इस प्रकार भ्रमवश जीव मानने लगता है। अनात्मपदार्थ के धर्म जब कर्तृत्व अभोक्तृत्व सुख दुःखादि हीन आत्मा में आरोपित होते हैं तब "अहं कर्ता", "अहं भोक्ता", "अहं सुखी", "अहं दुःखी" इस प्रकार से मूढ जीव मानने लगता है। आवरण शक्ति के द्वारा ही अपरिच्छिन्न परमात्मा का कर्तृत्व तथा भोक्तृत्वादि सम्भव होते हैं। जैसे अज्ञानवश सर्प रहित रस्सी में सर्पत्व की सम्भावना होने लगती है। इसलिए सदानन्द योगीन्द्र के द्वारा वेदान्तसार में कहा गया है कि "इस आवरण शक्ति के द्वारा ही अवच्छिन्न आत्मा का कर्तृत्व भोक्तृत्व सुख दुःख मोहात्मक तुच्छ संसार की भावना भी सम्भव होती है जैसे अपने अज्ञान से आवृत्त रस्सी में सर्पत्व की भावना होने लगती है"।

शक्तिमान कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है। प्रपञ्चरूपी कार्य के कारण अज्ञान में कार्यजनानुकूल शक्ति अवश्य होती है। सृष्टि की शक्ति ही विक्षेप शक्ति कहलाती है। अज्ञान जिस शक्ति के द्वारा स्वावृत्त आत्मा में आकाशादिप्रपञ्चों को उत्पन्न करता है वह विक्षेप शक्ति कहलाती है। वाक्यसुधा में यह कहा गया है कि "विक्षेपशक्ति ही लिङ्गादिब्रह्माण्ड जगत् को उत्पन्न करती है"। तीनों गुणों के

## सृष्टि विचार



## ध्यान दें:

मध्य जब रजोगुण के द्वारा तथा सत्वगुण के द्वारा तम अभिभूत नहीं होता है तब आवरण शक्ति की प्रधानता होती है। जब रजोगुण गुणान्तर के द्वारा अभिभूत नहीं होता है तब विक्षेपशक्ति की प्रधानता जाननी चाहिए। अद्वैतामोद में कहा गया है “रजस्तमोभ्यामनभिभूतं तमः आवरणशक्तिः तमःसत्त्वाभ्याम् अनभिभूतं रजः विक्षेपशक्तिः।” इस प्रकार से तमोगुण प्रधान अज्ञान के द्वारा वस्तु स्वरूप का आवरण उत्पन्न होता है तथा रजोगुण प्रधान अज्ञान के द्वारा आवृत्तवस्तु में मिथ्याभूत वस्तु प्रतीत होती है, इस प्रकार से समझना चाहिए।

## 15.9) कार्य तथा कारण का अनन्यत्व

कार्य तथा कारण क्या अत्यन्त विलक्षण हैं अथवा कार्य तथा कारण क्या सजातीय होते हैं इस प्रश्न का दर्शन सम्प्रदाय में बहुत काल से विचार किया जा रहा है। वहाँ कार्य को कारण से अत्यन्त ही विलक्षण बहुत से लोग मानते हैं तथा अनेक लोग कार्य तथा कारण सजातीय है इस पक्ष का भी समर्थन करते हैं। अद्वैत वेदान्ती तो कार्य तथा कारण में अनन्यत्व समझते हैं।

संसार में भोक्ता तथा भोग्य को भिन्न-भिन्न रूप में देखा भी जाता है। व्यवहार में प्रपञ्च की नाना जगहों पर प्रतीति होने से यह सभी को प्रत्यक्ष हो जाता है। इस कार्य भूत प्रपञ्च का कारण ही ब्रह्म है, इस प्रकार से अद्वैतवेदान्ति मानते हैं। अतः कारण ब्रह्म है तथा कार्य जगत् है। उन दोनों कार्य तथा कारण में जगत् तथा ब्रह्म में सजातीयत्व होता है या नहीं यहाँ पर संशय होता है। सजातीयत्व होने पर ही जगत् तथा ब्रह्म कार्य तथा कारण भाव से युक्त हो सकते हैं, विलक्षण होने पर तो कार्य तथा कारण भाव साथ में नहीं चल सकते हैं। ब्रह्म नित्य चेतन शुद्ध होता है तथा जगत् अनित्य अचेतन एवं अशुद्ध रूप में जाना जाता है। इसलिए उन दोनों का विलक्षणत्व जानना चाहिए। विलक्षणत्व तो कार्यकारणभाव में दिखाई नहीं देता है। जिस प्रकार से आभूषणों का कारण मृत्तिका नहीं हो सकती तथा शराव आदि का कारण स्वर्ण नहीं हो सकता। मिट्टी से ही मिट्टी के विकार उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार सुवर्ण से ही सुवर्ण के विकार उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार यह यह भी जगत् अचेतन सुखदुःखमोहान्वित होता हुआ अचेतन का ही सुखदुःखमोहात्मक कारण होने योग्य है न की विलक्षण ब्रह्म का। ब्रह्म का विलक्षणत्व इस जगत् के अशुद्ध चेतनत्व के दर्शन से समझना चाहिए। यह जगत् सुखदुःखमोहात्मकता के कारण प्रीतिपरितापविषादादिहेतुत्व से तथा स्वर्गनरकाद्युच्चावचप्रपञ्चत्व से अशुद्ध होता है। इसलिए विलक्षणत्व के कारण ब्रह्म तथा जगत् का कार्य तथा कारण भाव साथ में नहीं चल सकता है।

तब उत्तर देते हुए कहते हैं कि ऐसा नहीं है। विलक्षणत्वात् से तो यह जगत् ब्रह्मप्रकृति रूप सो जो कहा गया है वह साथ में नहीं चलता है। तथा यह अव्यभिरचरित नियम भी नहीं हैं कि कार्य तथा कारण में विलक्षणत्व नहीं होता है। संसार में देखा भी जाता है चेतनत्व युक्त पुरुषादि से विलक्षण केश नख आदि कि उत्पत्ति होती है तथा अचेतनत्व के रूप में प्रसिद्ध गोमयादि से वृश्चिकादि की उत्पत्ति होती है। अब कहते हैं की पुरुषों के शरीर भी अचेतन होते हैं तथा उनके कारण नखकेशादि भी अचेतन ही होते हैं तथा वृश्चिकादि अचेतन शरीर ही अचेतन गोमयादि का कार्य है, इस प्रकार से कुछ अचेतन तथा चेतन का आयतन भाव होता इसमें कुछ भी वैलक्षण्य नहीं है।

तब उत्तर देते हुए कहते हैं कि स्वरूप भेद से यहाँ पर पारिणामिक स्वभावविप्रकर्ष पुरुषादि का नखादि से तथा गोमयादि का वृश्चिकादि से होता है। यहाँ पर अत्यन्त सारूप्य होने के कारण प्रकृतिविकारभाव ही प्रतीत होता है, अतः विलक्षणत्व होने पर भी जगत् तथा ब्रह्म के कार्य तथा कारण

भाव को त्याग नहीं सकते। इसलिए श्रुतियाँ प्रपञ्च की ब्रह्म कारणता को बार बार कहती हैं। “तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः” इत्यादियों के द्वारा।

विलक्षणत्व भी यदि जगत् तथा ब्रह्म का कार्यकारणत्वभाव माने तो ब्रह्म के कार्य तथा कारण को स्वीकार करें तो ऐसा भी नहीं है। कार्य तथा कारण में व्यवहार वैलक्षण्य होने पर भी उसे परमार्थरूप से अनन्यत्व ही समझना चाहिए। इसलिए बादरायणकृत शारीरिकमीमांसा सूत्र में कहा गया है – “तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः” इति। इस सूत्र का सामान्य अर्थ यह है कि कार्य का कारणानन्यत्व समझना चाहिए, किस प्रकार से समझे तो कहते हैं कि चेत् पञ्चाचारम्भणं विकारो नामधेयम्” इस प्रकार की आरम्भ श्रुतियों के द्वारा समझना चाहिए। अतः भाष्यकार शङ्कराचार्य भगवत्पादने सूत्र भाष्य में कहा है कि “अभ्युपगम्य चेमं व्यावहारिकं भोक्तृभोग्यलक्षणं विभागम् ‘स्याल्लोकवत्’ इति परिहारोऽभिहितः; न त्वयं विभागः परमार्थतोऽस्ति, यस्मात्तयोः कार्यकारणयोरनन्यत्वमवगम्यते। कार्यमाकाशादिकं बहुप्रपञ्चं जगत्; कारणं परं ब्रह्म; तस्मात्कारणात्परमार्थतोऽनन्यत्वं व्यतिरेकेणाभावः कार्यस्यावगम्यते। कुतः। आरम्भणशब्दादिभ्यः।”

(अर्थात् इस व्यवहारिक भोक्तृभाव का विभाग लोक समान मानना चाहिए, इस प्रकार से परिहार भी अभिहित हो जाता है, लेकिन जो परमार्थ होता है उसका विभाग नहीं होता है जिससे उन दोनों कार्य तथा कारण का अनन्यत्व समझा जाता है। कार्य आकाशादि बहुप्रपञ्चात्मक जगत् होता है तथा कारण परब्रह्म होता है, अतः कारण से परमार्थत्व का अनन्यत्व तथा व्यतिरेक से अभाव कार्य का भी समझा जाता है। किस प्रकार से तो आरम्भण शब्दादि से।)

कारण तथा कार्य में अनन्यत्व समझना ही भाष्यकार का आशय है। जो अन्य नहीं है वह अनन्य कहलाता है उसका भाव अनन्यत्व अर्थात् उसके समान यह अर्थ होता है। इस प्रकार से उसके द्वारा कारण के समान ही कार्य होता है यह अर्थ लिया जाता है। क्या यही अर्थ भाष्यकार के द्वारा यहाँ पर अभिप्रेत है तो कहते हैं कि नहीं। भाष्यकार के द्वारा तो अनन्यत्व ही पद का अर्थ बताया गया है तथा व्यतिरेक द्वारा अभाव। इसका यह अर्थ हुआ कि कारणव्यतिरेक द्वारा कार्य का अभाव होता है। जैसे घट का कारण मृत्तिका है, यहाँ पर मिट्टी के व्यतिरेक से घट की सत्ता ही सम्भव नहीं होती है क्योंकि कारण मिट्टी तथा घट में अनन्यत्व है। उसी प्रकार रज्जु में जब सर्प प्रतीत होता है तब रज्जु के स्वरूप में व्यतिरेक के कारण सर्प नहीं होता है। रज्जु की सत्ता ही वस्तुतः सर्प की सत्ता होती है। अद्वैत वेदान्तियों के द्वारा अधिष्ठान सत्ता व्यतिरेक के कारण आरोपित सत्ता अङ्गीकार नहीं की जाती है। उससे अधिष्ठान भूत कारण की सत्ता ही वस्तुतः मिथ्यारूप में प्रतीयमान विकारभूत कार्य की सत्ता होती है। यदि रज्जु नहीं होती तो कभी भी सर्प प्रतीत नहीं होती। इस प्रकार से रज्जु के व्यतिरेक से प्रतीयमान सर्प का जो अभाव होता है, उसे ही कार्य तथा कारण में अनन्यत्व समझना चाहिए। कार्य तथा कारण के अनन्यत्व में छान्दोग्य श्रुति ही प्रमाभूत है। छान्दोग्योपनिषद् के छठे अध्याय में इस प्रकार से कहा गया है कि- ‘यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्’ (छा. उ. 6.1.4) इति। इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार से एक ही मिट्टी के पिण्ड से परमार्थता मिट्टी के स्वरूप को जानने से सभी मिट्टी के घट शराव आदि का ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार एक ब्रह्म को जानने से ही उसके विवर्तभूत नामरूपात्मक जगत् का भी ज्ञान हो जाता है।



ध्यान दें:



ध्यान दें:

जिस प्रकार विकार- घट शराव आदि होते हैं न की वस्तुवत् अन्य कोई विकार होते हैं इनका नामधेयमात्र तो अनृत होता है, इस प्रकार से मिट्टी ही सत्य होती है, उसी प्रकार कार्यभूत प्रपञ्च भी नामधेयमात्र तथा अनृत होता है यहाँ पर केवल कारण ब्रह्म ही सत् होता है। इस प्रकार से ब्रह्म व्यतिरेक के द्वारा कार्यजात का अभाव होता है इस प्रकार के दृष्टान्त से यह निष्कर्ष निकलता है। वस्तुतः उसी एक को जान लेने पर सभी को जाना जाता है इस प्रकार से प्रतिज्ञा की जाती है यदि कार्य तथा कारण में अनन्यत्व नहीं मानेंगे तो एक को जान लेने पर सभी को जाना जा सकता है यह प्रतिज्ञा नहीं की सकती। अतः कार्य तथा कारण का अनन्यत्व स्वीकार करना चाहिए।



### पाठगत प्रश्न-15.3

- सत्त्वगुण की तारतम्यता के अनुसार अविद्या तथा माया अज्ञान की द्विरूपता किसके द्वारा कल्पित की गई है?
  - विद्यारण्यस्वामी के द्वारा
  - सदानन्दयोगीन्द्र के द्वारा
  - गौडपादाचार्य के द्वारा
  - शङ्कराचार्य के द्वारा
- अद्वैत वेदान्त के मत में ईश्वर जगत का है?
  - उपादानकारणमात्रम्
  - निमित्तकारणमात्रम्
  - अभिन्ननिमित्तोपादानकारणम्
  - कुछ भी नहीं
- जगत का परिणामी उपादान कारण क्या है?
- जगत का विवर्तोपादान कारण क्या है?
- अज्ञान की दो शक्तियाँ कौन-कौन सी हैं?
- कार्य तथा कारण का अनन्यत्व किसे कहते हैं?



### पाठ सार

दर्शनों के आलोचित विषयों में अन्यतरूप से अद्वैत वेदान्त दर्शन में सृष्टितत्व का विचार किया गया है। अद्वैतमत में परमार्थतः सृष्टि नहीं होती है अपितु व्यवहार से ही सृष्टि होती है। अद्वैत दृष्टि के द्वारा सृष्टि श्रुतियों का तात्पर्य तो ब्रह्मतत्व का अवबोध ही होता है। इसलिए अध्यारोपवाद का आश्रय लेकर के श्रुतियों ने सृष्टि तत्व का वर्णन किया है, इस प्रकार का उनका अभिप्राय है। जगत की सृष्टि ईश्वर की लीला रूप ही है यहाँ पर कुछ कोई अन्य प्रयोजन नहीं समझना चाहिए। ईश्वर ही प्राणियों के

सृज्यमानकर्मों की अपेक्षानुसार जगत् की सृष्टि करता है जिससे इसमें वैषम्यनैर्घृण्यदोष भी नहीं आता है। सृष्टि का मूल कारण तो अज्ञानाभिधेय माया ही है। ईश्वर जगत् का अभिन्न निमित्तोपादन कारण है माया को परिणामी उपादान कारण तथा ईश्वर को विवर्तोपादन कारण समझना चाहिए। उस अज्ञान की ही आवरण तथा विक्षेप दो प्रकार की शक्ति होती है। आवरण शक्ति के द्वारा ब्रह्म का स्वरूप आच्छादित रहता है तथा विक्षेप शक्ति शक्ति से इस प्रपञ्च की रचना होती है। जगत् ब्रह्म से भिन्नत्व रूप में प्रतीत होने पर भी ब्रह्मविवर्तत्व के कारण ब्रह्म से अभिन्न ही जगत् को अङ्गीकार करना चाहिए कार्य तथा कारण के अनन्यत्व के नियम से। कार्य तथा कारण का अनन्यत्व कारण का व्यतिरेक तथा कार्य का अभाव होता है। इस प्रकार से ब्रह्मव्यतिरेक जगत् की सत्ता नहीं होती है इस प्रकार से समझना चाहिए।



### पाठान्त प्रश्न

1. अद्वैतवेदान्ती परमार्थ को किसलिए अङ्गीकार नहीं करते हैं विचार कीजिए।
2. अद्वैतमत में सृष्टि श्रुतियों के आशयों का वर्णन कीजिए।
3. अध्यारोपावाद न्याय का तात्पर्य लिखिए।
4. विवर्तवाद विषय में तथा परिणामवादविषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
5. अद्वैतमत में सृष्टि का प्रयोजन है अथवा नहीं यह विचार कीजिए।
6. ईश्वर के अभिन्नमित्तोपादन कारणत्व का प्रतिपादन कीजिए।
7. वैषम्यनैर्घृण्यदोष: ईश्वर में किस प्रकार से नहीं होता है विचार कीजिए।
8. अज्ञान की दोनों शक्तियों का आलोचन कीजिए।
9. कार्य तथा कारणत्व के अनन्यत्व का अद्वैत वेदान्त की दृष्टि से प्रतिपादन कीजिए।



### पाठगत प्रश्नों के उत्तर 15.1

1. न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।  
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता।। इति।
2. मन्दों के लिए
3. सविशेष तथा निर्विशेष इस प्रकार से दो रूप होते हैं।
4. निर्विशेष ब्रह्म ही नामरूप उपाधियों से विवर्जित शुद्धस्वरूप तथा सत्यज्ञानानन्तपदादि पद से लक्षित होता है
5. नामरूपोपाधिविशेषसम्बन्ध से ब्रह्म सविशेषत्व वाला होता है।
6. सर्व व्यवहार हीन ब्रह्मात्म प्रतिपादन के लिए।
7. ग) अध्यारोपादान्याय।



ध्यान दें:





ध्यान दें:

8. अध्यारोप वस्तु में होने वाला आरोप होता है।
9. अपवाद 'रज्जुविवर्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववद् वस्तुविवर्तस्य अवस्तुनः अज्ञानादेः प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम्' होता है।
10. रज्जु में सर्प का आरोप



### पाठगत प्रश्नों के उत्तर 15.2

1. परिणामभाव अर्थात् वस्तु का यथार्थ स्वस्वरूप को त्यागकर अन्य स्वरूप में परिवर्तन करना होता है जैसे दूध अपने स्वरूप को त्यागकर दही में रूप में परिवर्तन कर लेता है।
2. स्वस्वरूप अपरित्याग से स्वरूपान्तर से जो मिथ्या प्रतीति होती वह विवर्त कहलाता है, जैसे शुक्ति का अपने स्वरूप के अपरित्याग से रजत रूप में मिथ्या प्रतीति होती है।
3. अप्पयदीक्षित के मत में समसत्ताक अन्यथा भाव परिणाम होता है तथा विषयसत्ताका अन्यथा भाव विवर्त होता है।
4. पारमार्थिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता तथा प्रातिभासिक सत्ता।
5. पारमार्थिक सत्ता बाध्यत्व।
6. ख) लीला रूप
7. धर्माधर्माख्य कर्म।
8. सृज्यमानप्राणिधर्माधर्म की अपेक्षा के कारण विषम सृष्टि होती है।



### पाठगत प्रश्नों के उत्तर 15.3

1. क) विद्यारण्यस्वामी के द्वारा
2. ग) अभिन्निमित्तोपादान कारण
3. अज्ञानाभिदेया माया
4. ईश्वर
5. आवरण शक्ति तथा विक्षेपशक्ति
6. कारणव्यतिरेक से कार्य का अभाव।